The Chitransh Academic & Research
An International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume2 | Issue 1 |March 2026
ISSN: 3049-303X (Online)
Website: www.thechitranshacadmic.in

मूल्य-तटस्थ शिक्षा की संभावना और सीमाएँ: शिक्षा में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता का दार्शनिक परीक्षण

डॉ. बाबूराम मौर्य

नारायणपुरी कॉलोनी, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

लेख विवरण

शोधपत्र

प्राप्ति तिथि: 14/03/2026

स्वीकृति तिथि: 20/03/2026

प्रकाशनतिथि: 31/03/2026

मुख्य शब्द: मूल्य-तटस्थता, शिक्षा-दर्शन, नैतिक शिक्षा, मूल्य-शिक्षा, नैतिक विवेक, बहुलतावाद, मानवीय गरिमा, लोकतांत्रिक शिक्षा, आलोचनात्मक चिंतन।

सारांश

शिक्षा और मूल्य के पारस्परिक संबंध का प्रश्न शिक्षा-दर्शन की आधारभूत समस्याओं में से एक है। आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में वस्तुनिष्ठता, वैज्ञानिकता, वैचारिक स्वतंत्रता तथा बहुलतावाद के आग्रह ने मूल्य-तटस्थ शिक्षा की धारणा को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। इसके पीछे यह आशंका निहित है कि यदि शिक्षा किसी पूर्वनिर्धारित नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक मूल्य-व्यवस्था को स्वीकार कर लेती है, तो वह स्वतंत्र चिंतन के स्थान पर मतारोपण का माध्यम बन सकती है। इसके विपरीत यह प्रश्न भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि क्या शिक्षा वास्तव में मूल्यों से पूर्णतः तटस्थ रह सकती है। ज्ञान का चयन, पाठ्यक्रम की संरचना, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, अनुशासन, मूल्यांकन, समान अवसर, संवाद, सत्यनिष्ठा और संस्थागत व्यवस्था—इनमें से प्रत्येक के पीछे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कुछ मूल्य सक्रिय रहते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य मूल्य-तटस्थ शिक्षा की दार्शनिक संभावना तथा उसकी सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण करना है। अध्ययन में विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक दार्शनिक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। शोध का केंद्रीय प्रतिपादन यह है कि शिक्षा की पूर्ण मूल्य-तटस्थता न तो अवधारणात्मक रूप से संभव है और न ही व्यावहारिक रूप से वांछनीय। तथापि इसका अर्थ यह भी नहीं है कि शिक्षा को किसी बंद अथवा अपरिवर्तनीय मूल्य-संहिता का प्रचारक बना दिया जाए। लोकतांत्रिक और बहुलतावादी समाज में शिक्षा को ऐसी नैतिक आधारभूमि की आवश्यकता है जो मानवीय गरिमा, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, सह-अस्तित्व, करुणा, सत्यनिष्ठा, आलोचनात्मक विवेक और संवाद जैसे मूल्यों को स्वीकार करते हुए स्वयं इन मूल्यों की विवेकपूर्ण समीक्षा की गुंजाइश बनाए रखे। इस प्रकार मूल्यवान शिक्षा और मूल्य-आरोपण के मध्य अंतर करना समकालीन शिक्षा-दर्शन की केंद्रीय आवश्यकता है।

१. प्रस्तावना

शिक्षा को सामान्यतः ज्ञान, कौशल और क्षमताओं के विकास की प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, किंतु शिक्षा का इतिहास बताता है कि उसका उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना कभी नहीं रहा। प्रत्येक समाज शिक्षा के माध्यम से यह भी निर्धारित करता है कि नई पीढ़ी किस प्रकार का जीवन जीए, दूसरों के प्रति उसका व्यवहार कैसा हो, सार्वजनिक जीवन में उसकी भूमिका क्या हो और वह सत्य, न्याय, स्वतंत्रता तथा उत्तरदायित्व जैसी अवधारणाओं को किस प्रकार समझे। इसी कारण शिक्षा का प्रश्न अंततः मनुष्य और उसके वांछनीय जीवन के प्रश्न से जुड़ जाता है।

यहीं मूल्य-तटस्थता की समस्या उत्पन्न होती है। यदि शिक्षक विद्यार्थियों के समक्ष किसी विशिष्ट नैतिक धारणा को उचित बताता है, तो यह आशंका उत्पन्न होती है कि कहीं शिक्षा स्वतंत्र विवेक के विकास के स्थान पर विचारारोपण तो नहीं कर रही। दूसरी ओर, यदि शिक्षक हर नैतिक प्रश्न पर पूर्ण तटस्थता बनाए रखता है, तो क्या वह हिंसा और अहिंसा, भेदभाव और समानता, छल और सत्यनिष्ठा अथवा अन्याय और न्याय को समान नैतिक स्तर पर रखने का जोखिम नहीं उठाता?

यह द्वंद्व विशेष रूप से लोकतांत्रिक समाजों में अधिक जटिल है। लोकतंत्र को एक ओर नागरिकों की स्वतंत्रता और विचारों की विविधता की रक्षा करनी होती है, दूसरी ओर उसे अपनी निरंतरता के लिए ऐसे नागरिकों की आवश्यकता होती है जो स्वतंत्रता, समानता, पारस्परिक सम्मान, विधिसम्मत आचरण और संवाद को मूल्यवान समझें। फलतः लोकतांत्रिक शिक्षा स्वयं एक विरोधाभास के सम्मुख दिखाई देती है—उसे स्वतंत्र चिंतन सिखाना है, किंतु स्वतंत्र चिंतन संभव बनाने वाले कुछ मूल्यों का संरक्षण भी करना है।

इस शोध-पत्र में इसी विरोधाभास का दार्शनिक परीक्षण किया गया है।

२. अध्ययन की समस्या

इस अध्ययन की मूल समस्या को निम्न प्रश्न में व्यक्त किया जा सकता है—

क्या शिक्षा मूल्यों के प्रति पूर्णतः तटस्थ हो सकती है और यदि नहीं, तो शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश किस सीमा तक किया जाना चाहिए ताकि वह मूल्य-आरोपण में परिवर्तित न हो?

इस केंद्रीय समस्या के भीतर अनेक उप-समस्याएँ अंतर्निहित हैं। ज्ञान और मूल्य के मध्य संबंध क्या है? क्या तथ्य और मूल्य का पूर्ण विभाजन संभव है? क्या शिक्षक की तटस्थता विद्यार्थियों की स्वतंत्रता की

आवश्यक शर्त है? क्या तटस्थता स्वयं एक मूल्य है? क्या नैतिक शिक्षा अनिवार्यतः विचारारोपण बन जाती है? तथा बहुलतावादी समाज में किन मूल्यों को शैक्षिक रूप से न्यायोचित माना जा सकता है?

३. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं—

१. मूल्य-तटस्थता की अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण करना।

२. शिक्षा और मूल्य के अंतर्संबंध का परीक्षण करना।

३. पूर्ण मूल्य-तटस्थ शिक्षा की सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक संभावना का मूल्यांकन करना।

४. शिक्षा में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता के पक्ष और विपक्ष में उपस्थित प्रमुख दार्शनिक तर्कों की समीक्षा करना।

५. नैतिक शिक्षा और मूल्य-आरोपण के मध्य अंतर स्पष्ट करना।

६. लोकतांत्रिक और बहुलतावादी समाज में मूल्य-शिक्षा की न्यायसंगत सीमाओं का निर्धारण करना।

७. भारतीय शैक्षिक संदर्भ में नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों की भूमिका का परीक्षण करना।

८. ऐसी मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत करना जो आलोचनात्मक चिंतन तथा विद्यार्थी की नैतिक स्वायत्तता के अनुकूल हो।

४. अनुसंधान प्रश्न

अध्ययन निम्नलिखित अनुसंधान प्रश्नों पर केंद्रित है—

१. मूल्य-तटस्थ शिक्षा से क्या अभिप्राय है?

२. क्या शिक्षा ज्ञान प्रदान करते हुए मूल्यों से निरपेक्ष रह सकती है?

३. क्या पाठ्यक्रम-निर्माण स्वयं एक मूल्यपरक क्रिया है?

४. शिक्षक की मूल्य-तटस्थता कहाँ तक संभव और वांछनीय है?

५. नैतिक शिक्षा और विचारारोपण के बीच सीमा किस आधार पर निर्धारित की जा सकती है?

६. क्या कुछ नैतिक मूल्य शिक्षा की संभावना के लिए ही आवश्यक पूर्वशर्त हैं?

७. भारतीय लोकतांत्रिक और बहुलतावादी संदर्भ में मूल्य-शिक्षा का उचित स्वरूप क्या हो सकता है?

५. अनुसंधान-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मूलतः दार्शनिक एवं सैद्धांतिक प्रकृति का है। इसमें प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के अध्ययन के साथ चार परस्पर संबद्ध पद्धतियों का उपयोग किया गया है।

विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से मूल्य, तटस्थता, नैतिकता, स्वायत्तता, विचारारोपण तथा शिक्षा जैसी मूल अवधारणाओं का अर्थ स्पष्ट किया गया है।

व्याख्यात्मक पद्धति द्वारा विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में शिक्षा और नैतिकता के संबंध की व्याख्या की गई है।

तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत उदारवादी, प्रयोगवादी, कर्तव्यवादी, सद्गुणवादी तथा भारतीय चिंतन-परंपराओं में शिक्षा के नैतिक प्रयोजन की तुलना की गई है।

अंततः आलोचनात्मक पद्धति द्वारा मूल्य-तटस्थता के पक्ष और विपक्ष में उपलब्ध तर्कों की तार्किक संगति तथा शैक्षिक परिणामों की समीक्षा की गई है।

इस अध्ययन में कोई क्षेत्रीय सर्वेक्षण नहीं किया गया है। अतः इसके निष्कर्ष दार्शनिक और मानकात्मक प्रकृति के हैं, सांख्यिकीय सामान्यीकरण के रूप में नहीं।

६. मूल्य की अवधारणा

मूल्य उस मानक, आदर्श, गुण अथवा स्थिति को कहा जा सकता है जिसके आधार पर मनुष्य किसी वस्तु, कर्म, संस्था अथवा जीवन-पद्धति को वांछनीय या अवांछनीय मानता है। मूल्य केवल व्यक्तिगत पसंद नहीं हैं। कुछ मूल्य व्यक्तिगत हो सकते हैं, किंतु न्याय, समानता, मानवीय गरिमा, सत्यनिष्ठा तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्य सामाजिक और संस्थागत जीवन की संरचना से भी जुड़े होते हैं।

दार्शनिक दृष्टि से मूल्य का प्रश्न इस बात से संबंधित है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए, किस प्रकार का जीवन अच्छा है और किन आधारों पर किसी कर्म को उचित अथवा अनुचित कहा जा सकता है। शिक्षा जैसे ही इन प्रश्नों को स्पर्श करती है, वह मूल्य-मीमांसा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है।

विद्यालय यदि यह अपेक्षा करता है कि विद्यार्थी परीक्षा में छल न करे, दूसरे विद्यार्थियों के साथ हिंसा न करे, भिन्न विचारों को सुनने का धैर्य रखे और सार्वजनिक संपत्ति का सम्मान करे, तो विद्यालय पहले ही कुछ नैतिक मानकों को स्वीकार कर चुका है। अतः शिक्षा में मूल्य केवल अलग से पढ़ाए जाने वाले विषय नहीं हैं; वे संस्था के दैनिक जीवन में भी विद्यमान रहते हैं।

७. मूल्य-तटस्थता का अर्थ

मूल्य-तटस्थता का सामान्य अर्थ यह है कि ज्ञान के प्रस्तुतीकरण में शिक्षक अपने व्यक्तिगत नैतिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक आग्रह को तथ्य के रूप में विद्यार्थी पर आरोपित न करे। इस अर्थ में मूल्य-तटस्थता अकादमिक ईमानदारी की आवश्यक शर्त प्रतीत होती है।

परंतु इसके कम से कम तीन स्तरों को अलग करना आवश्यक है।

पहला है ज्ञानात्मक तटस्थता—तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में प्रमाण और तर्क को प्राथमिकता देना।

दूसरा है शिक्षकीय तटस्थता—विवादास्पद प्रश्नों पर विद्यार्थी को शिक्षक के निजी मत को स्वीकार करने के लिए बाध्य न करना।

तीसरा है संस्थागत मूल्य-तटस्थता—शिक्षा-व्यवस्था द्वारा किसी विशेष नैतिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता न देना।

प्रथम दो रूप सीमित अर्थ में संभव और वांछनीय हो सकते हैं। तीसरा रूप अधिक समस्याग्रस्त है, क्योंकि शिक्षा-संस्था को समानता, सुरक्षा, सत्यनिष्ठा, न्यायपूर्ण मूल्यांकन और पारस्परिक सम्मान जैसे कुछ सिद्धांतों के आधार पर संचालित होना ही पड़ता है।

८. तथ्य और मूल्य का प्रश्न

मूल्य-तटस्थ शिक्षा की अवधारणा के पीछे तथ्य और मूल्य के बीच भेद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी कथन का तथ्यात्मक होना और किसी कर्म का वांछनीय होना एक ही बात नहीं है। उदाहरण के लिए, यह कहना कि किसी समाज में असमानता विद्यमान है एक वर्णनात्मक कथन हो सकता है; किंतु यह कहना कि असमानता अन्यायपूर्ण है, मानकात्मक निर्णय है।

फिर भी शिक्षा में दोनों को पूर्णतः अलग रखना कठिन है। कौन-से तथ्य पढ़ाए जाएँ, इतिहास की किन घटनाओं को महत्त्व दिया जाए, किन साहित्यिक कृतियों को पाठ्यक्रम में रखा जाए और किन क्षमताओं का मूल्यांकन किया जाए—ये सभी चयन हैं। चयन के पीछे महत्त्व का कोई न कोई मानदंड आवश्यक है।

इसलिए पाठ्यक्रम केवल उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्त रूप नहीं होता; वह यह भी व्यक्त करता है कि समाज किस ज्ञान को अगली पीढ़ी के लिए महत्त्वपूर्ण मानता है।

यहाँ से एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है—शिक्षा मूल्य-रहित नहीं हो सकती, यद्यपि वह मूल्य-सचेत और आलोचनात्मक अवश्य हो सकती है।

९. मूल्य-तटस्थ शिक्षा के पक्ष में तर्क

मूल्य-तटस्थता का आग्रह निरर्थक नहीं है। उसके पीछे गंभीर नैतिक चिंताएँ हैं।

सबसे पहली चिंता विद्यार्थी की स्वायत्तता है। यदि शिक्षा का उद्देश्य स्वतंत्र चिंतनशील व्यक्ति का निर्माण है, तो शिक्षक द्वारा तैयार नैतिक निष्कर्षों को विद्यार्थी पर आरोपित करना उस उद्देश्य के

विपरीत होगा।

दूसरा आधार बहुलतावाद है। आधुनिक समाजों में विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक समुदाय सह-अस्तित्व में रहते हैं। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक शिक्षा यदि किसी एक समुदाय की जीवन-दृष्टि को सार्वभौमिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करे, तो अन्य समुदायों के साथ अन्याय हो सकता है।

तीसरा आधार विचारारोपण का खतरा है। शिक्षा और प्रचार में अंतर तभी सुरक्षित रह सकता है जब विद्यार्थी को प्रश्न करने, असहमति रखने और प्रमाण माँगने की स्वतंत्रता प्राप्त हो।

चौथा आधार वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। ज्ञान का मूल्यांकन व्यक्ति की प्रतिष्ठा अथवा परंपरा के बजाय तर्क, प्रमाण और परीक्षण के आधार पर किया जाना चाहिए।

इन तर्कों से स्पष्ट होता है कि मूल्य-तटस्थता की धारणा का एक महत्त्वपूर्ण नैतिक कार्य है—वह शिक्षक और संस्था की शक्ति को सीमित करती है।

१०. मूल्य-तटस्थता का अंतर्विरोध

मूल्य-तटस्थता के सिद्धांत में एक गहरा अंतर्विरोध दिखाई देता है। जब हम कहते हैं कि शिक्षक को विद्यार्थियों की स्वतंत्रता का सम्मान करना चाहिए, तो हम पहले ही स्वतंत्रता और सम्मान को मूल्य मान चुके होते हैं। जब कहा जाता है कि शिक्षा को निष्पक्ष होना चाहिए, तब निष्पक्षता को मूल्य स्वीकार किया जा चुका होता है।

इसी प्रकार प्रमाण, तार्किकता, बौद्धिक ईमानदारी और सत्य की खोज भी मूल्यपरक प्रतिबद्धताएँ हैं। अतः पूर्ण मूल्य-तटस्थता की माँग स्वयं कुछ मूल्यों पर आधारित है।

यह निष्कर्ष मूल्य-तटस्थता को पूरी तरह निरर्थक नहीं बनाता। इसके बजाय यह संकेत करता है कि हमें "मूल्य-तटस्थ शिक्षा" और "निष्पक्ष शिक्षा" को समानार्थी नहीं मानना चाहिए। निष्पक्षता का अर्थ मूल्य-विहीनता नहीं बल्कि अपने मूल्य-निर्णयों को तर्क और सार्वजनिक समीक्षा के लिए खुला रखना है।

११. शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है

शिक्षा और प्रशिक्षण के बीच अंतर का एक आधार यह है कि शिक्षा केवल व्यवहारगत दक्षता नहीं देती बल्कि व्यक्ति की समझ और निर्णय-क्षमता का विकास करती है।

"शिक्षित व्यक्ति" की धारणा में ही कुछ सकारात्मक मूल्य जुड़े होते हैं। किसी व्यक्ति ने बहुत-सी सूचनाएँ याद कर ली हों, किंतु वह प्रमाण, तर्क, संवाद और दूसरे मनुष्यों की गरिमा का कोई सम्मान न

करता हो, तो उसे पूर्ण अर्थ में शिक्षित कहने में संकोच होगा।

इस दृष्टि से शिक्षा स्वयं एक मानकात्मक अवधारणा है। उसमें यह विचार अंतर्निहित है कि मनुष्य की कुछ क्षमताओं का विकास अन्य की अपेक्षा अधिक वांछनीय है।

१२. नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

मनुष्य का ज्ञान जितना बढ़ता है, उसकी क्रिया-क्षमता भी उतनी बढ़ती है। किंतु क्रिया-क्षमता स्वयं यह निर्धारित नहीं करती कि उसका प्रयोग किस उद्देश्य के लिए किया जाए। वैज्ञानिक ज्ञान रोग का उपचार कर सकता है और विनाशकारी साधनों का निर्माण भी। तकनीकी दक्षता सामाजिक कल्याण में प्रयुक्त हो सकती है और शोषण में भी।

इसलिए "क्या किया जा सकता है?" का उत्तर "क्या किया जाना चाहिए?" का उत्तर नहीं देता।

यहीं नैतिक विवेक की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

शिक्षा यदि केवल साधन उपलब्ध कराती है और उद्देश्यों पर विचार करने की क्षमता विकसित नहीं करती, तो वह मनुष्य को अधिक सक्षम तो बना सकती है, किंतु आवश्यक नहीं कि अधिक उत्तरदायी भी बनाए।

१३. कांट और नैतिक स्वायत्तता

कांट के नैतिक दर्शन में मनुष्य को स्वयं में साध्य मानने का सिद्धांत शिक्षा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थी को केवल किसी राज्य, अर्थव्यवस्था अथवा संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति का साधन मानना उसकी नैतिक गरिमा को सीमित करता है।

कांट की स्वायत्तता की अवधारणा यह संकेत करती है कि वास्तविक नैतिकता बाह्य आज्ञापालन मात्र नहीं है। नैतिक व्यक्ति वह है जो विवेक के आधार पर नियम की न्यायसंगतता समझ सके।

इससे नैतिक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत प्राप्त होता है—नैतिक शिक्षा का उद्देश्य "आज्ञाकारी विद्यार्थी" नहीं, बल्कि "नैतिक रूप से विवेकशील व्यक्ति" होना चाहिए।

१४. जॉन ड्यूई और लोकतांत्रिक शिक्षा

ड्यूई ने शिक्षा को जीवन की तैयारी मात्र नहीं बल्कि स्वयं जीवन की प्रक्रिया माना। उनके लिए लोकतंत्र केवल शासन-व्यवस्था नहीं, बल्कि सहजीवन और संयुक्त अनुभव की पद्धति है।

इस दृष्टि से विद्यालय स्वयं एक लघु सामाजिक संसार है। यदि विद्यालय में संवाद, सहभागिता और

पारस्परिक सम्मान का अभाव है, तो पाठ्यपुस्तक में लोकतंत्र पढ़ाने मात्र से लोकतांत्रिक व्यक्तित्व का विकास संभव नहीं।

ड्यूई का योगदान यह समझने में सहायक है कि मूल्य-शिक्षा केवल कथनों से नहीं होती। विद्यालय की संरचना, शिक्षक का व्यवहार और विद्यार्थियों के बीच संबंध स्वयं नैतिक शिक्षा के माध्यम होते हैं।

१५. भारतीय दार्शनिक संदर्भ

भारतीय चिंतन में शिक्षा और नैतिकता का संबंध अत्यंत प्राचीन है। ज्ञान को अनेक परंपराओं में आत्मानुशासन, विवेक तथा जीवन-पद्धति से जोड़ा गया है।

बौद्ध चिंतन में प्रज्ञा और करुणा परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। जैन परंपरा का अनेकांतवाद यह शिक्षा देता है कि वास्तविकता के विषय में अपने दृष्टिकोण की सीमाओं को स्वीकार करना बौद्धिक विनम्रता का आधार बन सकता है।

गांधी के लिए शिक्षा शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास की प्रक्रिया थी। सत्य और अहिंसा उनके लिए केवल पढ़ाए जाने वाले मूल्य नहीं बल्कि जीवन और शिक्षा की पद्धति थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वतंत्रता, सृजनात्मकता, प्रकृति और मानवतावाद को शिक्षा के साथ जोड़ा। उनकी दृष्टि में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रहे, किंतु संकीर्णता से मुक्त होकर विश्व-मानवता की ओर बढ़ सके।

इन भारतीय दृष्टियों का महत्त्व इस बात में है कि वे नैतिक शिक्षा को नियमों की सूची के रूप में नहीं बल्कि जीवन-व्यवहार के रूप में समझने की प्रेरणा देती हैं।

१६. नैतिक शिक्षा और विचारारोपण में अंतर

नैतिक शिक्षा के विरुद्ध सबसे गंभीर आपत्ति यह है कि वह विचारारोपण बन सकती है। किंतु दोनों को समान मानना उचित नहीं है।

विचारारोपण में निष्कर्ष पहले से निश्चित होता है और विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह उसे स्वीकार करे। प्रश्न और असहमति को हतोत्साहित किया जाता है।

इसके विपरीत नैतिक शिक्षा का लोकतांत्रिक रूप प्रश्न को प्रोत्साहित करता है। विद्यार्थी से पूछा जाता है—यह मूल्य क्यों उचित है? किन परिस्थितियों में दो मूल्य परस्पर संघर्ष कर सकते हैं? न्याय और समानता में क्या संबंध है? स्वतंत्रता की सीमाएँ कहाँ हैं?

अतः अंतर केवल पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु में नहीं, बल्कि शिक्षण-पद्धति में निहित है।

जहाँ कारण के स्थान पर अधिकार का प्रयोग होता है, वहाँ विचारारोपण का खतरा बढ़ता है। जहाँ तर्क, संवाद, प्रमाण, आत्मालोचना और असहमति संभव हैं, वहाँ नैतिक शिक्षा स्वतंत्रता के अनुकूल हो सकती है।

१७. तटस्थता की नैतिक सीमाएँ

क्या शिक्षक प्रत्येक विवाद पर तटस्थ रह सकता है?

मान लें कि कक्षा में किसी विद्यार्थी के साथ उसकी जाति, लिंग, भाषा अथवा सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा है। यदि शिक्षक "दोनों पक्षों" के प्रति तटस्थ रहने के नाम पर हस्तक्षेप न करे, तो उसकी तटस्थता वास्तव में विद्यमान अन्याय को बने रहने देती है।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कुछ स्थितियों में निष्क्रिय तटस्थता स्वयं नैतिक परिणाम उत्पन्न करती है। तटस्थता इसलिए प्रत्येक परिस्थिति में सर्वोच्च शैक्षिक सद्गुण नहीं हो सकती। जहाँ बुनियादी मानवीय गरिमा, सुरक्षा अथवा समानता का उल्लंघन हो रहा हो, वहाँ शिक्षा-संस्था का हस्तक्षेप नैतिक रूप से उचित हो सकता है।

१८. बहुलतावाद और साझा नैतिक आधार

बहुलतावादी समाज में समस्या यह है कि साझा नैतिक आधार कहाँ से प्राप्त हो।

इसका समाधान किसी एक धार्मिक अथवा सांस्कृतिक नैतिक संहिता को सब पर लागू करना नहीं हो सकता। दूसरी ओर पूर्ण सापेक्षवाद भी कठिनाई उत्पन्न करता है, क्योंकि यदि प्रत्येक मूल्य केवल व्यक्तिगत पसंद है तो अन्याय अथवा अमानवीय व्यवहार की सार्वजनिक आलोचना का आधार कमजोर पड़ जाता है।

इस समस्या का एक संभावित समाधान ऐसे मूल्यों में है जिन्हें विविध जीवन-दृष्टियों के लोग भिन्न दार्शनिक कारणों से स्वीकार कर सकें।

मानवीय गरिमा, अहिंसक सह-अस्तित्व, न्याय, समान नागरिक सम्मान, विवेक की स्वतंत्रता, सत्यनिष्ठा, उत्तरदायित्व और संवाद ऐसे मूल्यों के उदाहरण हो सकते हैं।

इन मूल्यों को अंतिम और आलोचना से परे सत्य के रूप में नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण सह-अस्तित्व की न्यूनतम शर्तों के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

१९. भारतीय संविधान और मूल्यपरक शिक्षा

भारतीय संदर्भ में संविधान शिक्षा को साझा नैतिक आधार प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता केवल राजनीतिक शब्द नहीं हैं; वे सार्वजनिक जीवन के नैतिक आदर्श भी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में मानवीय, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। नीति सत्य, शांति, प्रेम, अहिंसा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नागरिक मूल्यों तथा सेवा जैसे तत्वों को मूल्य-आधारित शिक्षा से जोड़ती है। विद्यालय स्तर पर नैतिक निर्णय के लिए तार्किक आधार विकसित करने तथा सहिष्णुता, समानता, समानुभूति, न्याय, स्वतंत्रता और बंधुता जैसे मूल्यों के विकास पर भी बल दिया गया है।

इस नीति-दृष्टि का दार्शनिक महत्त्व इस बात में है कि मूल्य-शिक्षा को केवल धार्मिक अथवा उपदेशात्मक शिक्षा के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक निर्णय-क्षमता और संवैधानिक नागरिकता से जोड़ा जा सकता है।

फिर भी नीति में किसी मूल्य का उल्लेख मात्र उसके सफल शैक्षिक रूपांतरण की गारंटी नहीं देता। वास्तविक प्रश्न यह है कि इन मूल्यों को कक्षा, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन तथा संस्थागत व्यवहार में किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है।

२०. छिपा हुआ पाठ्यक्रम और नैतिक शिक्षा

विद्यालय केवल वही नहीं सिखाता जो पाठ्यपुस्तक में लिखा होता है। विद्यालय की दिनचर्या, पुरस्कार और दंड की व्यवस्था, शिक्षक का व्यवहार, नेतृत्व की शैली और विद्यार्थियों के साथ किया जाने वाला व्यवहार भी शिक्षा प्रदान करते हैं।

यदि पाठ्यपुस्तक समानता सिखाती है किंतु विद्यालय में कुछ विद्यार्थियों के साथ सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव होता है, तो व्यवहार में दिया गया संदेश लिखित पाठ से अधिक प्रभावी हो सकता है।

इसे शिक्षा के "छिपे हुए पाठ्यक्रम" के रूप में समझा जा सकता है।

इसीलिए मूल्य-शिक्षा को एक अलग पाठ्यक्रम अथवा सप्ताह में एक नैतिक शिक्षा की कक्षा तक सीमित करना पर्याप्त नहीं। संस्था स्वयं जिन मूल्यों को जीती है, विद्यार्थी उनसे कहीं अधिक सीखते हैं।

२१. शिक्षक की भूमिका

मूल्यपरक शिक्षा में शिक्षक की भूमिका अत्यंत संवेदनशील है। शिक्षक न तो नैतिक उपदेशक मात्र है और न ही मूल्य-विवादों का निष्क्रिय दर्शक।

उसे विद्यार्थियों को नैतिक प्रश्न पहचानने, विभिन्न पक्षों को समझने, तर्कों का परीक्षण करने, दूसरे व्यक्ति की स्थिति पर विचार करने और अपने निष्कर्षों की समीक्षा करने की क्षमता विकसित करने में सहायता करनी चाहिए।

इसके लिए शिक्षक को स्वयं भी बौद्धिक विनम्रता अपनानी होगी। "मुझे ऐसा लगता है" और "यह प्रमाणित तथ्य है"—इन दोनों के बीच अंतर स्पष्ट करना शिक्षकीय नैतिकता का हिस्सा है।

विद्यार्थी को शिक्षक से असहमत होने का अधिकार तभी सार्थक होगा जब असहमति के कारण उसे दंड अथवा अपमान का सामना न करना पड़े।

२२. नैतिक दुविधाओं का शैक्षिक महत्त्व

नैतिक शिक्षा में तैयार उत्तर देने के बजाय नैतिक दुविधाओं पर चर्चा अधिक उपयोगी हो सकती है।

उदाहरण के लिए, सत्य बोलने और किसी व्यक्ति को अनावश्यक हानि से बचाने के मूल्य कभी-कभी संघर्ष में आ सकते हैं। इसी प्रकार व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच भी तनाव उत्पन्न हो सकता है।

ऐसे प्रसंग विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता करते हैं कि नैतिक जीवन केवल नियमों को याद रखने का नाम नहीं है। उसमें परिस्थिति, परिणाम, कर्तव्य, अधिकार और मानवीय संवेदना—सभी पर विचार करना पड़ता है।

यहीं नैतिक निर्णय-क्षमता विकसित होती है।

२३. मूल्य-शिक्षा की प्रमुख सीमाएँ

मूल्य-शिक्षा आवश्यक होने के बावजूद अनेक जोखिमों से जुड़ी है।

पहला खतरा सांस्कृतिक वर्चस्व का है। बहुसंख्यक समुदाय के मूल्यों को सार्वभौमिक बताने से अल्पसंख्यक अनुभव हाशिए पर जा सकते हैं।

दूसरा खतरा राजनीतिक उपयोग का है। शिक्षा के माध्यम से किसी विशेष सत्ता-दृष्टि को नैतिक सत्य के रूप में प्रस्तुत करना स्वतंत्र शिक्षा के लिए घातक हो सकता है।

तीसरा खतरा उपदेशवाद है। केवल सदाचार की बातें सुनाने से नैतिक चरित्र निर्मित नहीं होता।

चौथा खतरा मूल्य और व्यवहार के अंतर का है। संस्था यदि ईमानदारी पढ़ाती है किंतु स्वयं अपारदर्शी

है, तो मूल्य-शिक्षा विश्वसनीयता खो देती है।

पाँचवाँ खतरा मूल्यांकन का है। नैतिकता को परीक्षा के अंकों में बदल देना समस्या उत्पन्न करता है। विद्यार्थी नैतिक उत्तर लिख सकता है, किंतु उसका व्यवहार भिन्न हो सकता है।

२४. क्या सार्वभौमिक नैतिक मूल्य संभव हैं?

यह प्रश्न मूल्य-शिक्षा की सबसे कठिन दार्शनिक समस्याओं में से है।

यदि कोई मूल्य सार्वभौमिक है, तो उसकी सार्वभौमिकता का आधार क्या है? ईश्वर, विवेक, प्रकृति, उपयोगिता, मानवीय गरिमा अथवा सामाजिक सहमति?

विभिन्न दार्शनिक परंपराएँ अलग उत्तर देती हैं।

फिर भी व्यावहारिक शिक्षा के स्तर पर पूर्ण दार्शनिक सहमति आवश्यक नहीं। उदाहरणतः दो व्यक्ति मानवीय गरिमा को स्वीकार कर सकते हैं, यद्यपि एक उसका आधार धार्मिक विश्वास में और दूसरा मानवाधिकार की अवधारणा में खोजता हो।

इस प्रकार शिक्षा में साझा मूल्य के लिए साझा अंतिम दर्शन आवश्यक नहीं; कुछ मामलों में साझा सार्वजनिक आचरण पर्याप्त हो सकता है।

२५. मूल्य-तटस्थता से मूल्य-विवेक की ओर

इस शोध का प्रमुख प्रस्ताव यह है कि शिक्षा के लक्ष्य के रूप में "मूल्य-तटस्थता" की अपेक्षा मूल्य-विवेक अधिक उपयुक्त अवधारणा है।

मूल्य-विवेक का अर्थ है—

विद्यार्थी यह समझ सके कि किसी निर्णय के पीछे कौन-से मूल्य कार्य कर रहे हैं; विभिन्न मूल्यों के संघर्ष को पहचान सके; अपने नैतिक विश्वासों के कारण प्रस्तुत कर सके; दूसरे दृष्टिकोण को निष्पक्षता से सुन सके; प्रमाण अथवा बेहतर तर्क मिलने पर अपने मत में संशोधन कर सके; और मानव गरिमा तथा न्याय के प्रश्नों के प्रति संवेदनशील रह सके।

इस मॉडल में शिक्षक मूल्यों से पलायन नहीं करता, किंतु उन्हें आदेश के रूप में भी प्रस्तुत नहीं करता।

२६. प्रस्तावित दार्शनिक प्रतिमान: आलोचनात्मक मूल्यपरक शिक्षा

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इस अध्ययन में आलोचनात्मक मूल्यपरक शिक्षा का प्रतिमान प्रस्तावित किया जाता है।

इसकी पहली विशेषता है—न्यूनतम साझा नैतिक आधार। शिक्षा मानवीय गरिमा, न्याय, समान सम्मान,

अहिंसा, सत्यनिष्ठा और संवाद जैसी शर्तों को स्वीकार करे।

दूसरी विशेषता है—आलोचनात्मक खुलापन। इन मूल्यों की व्याख्या और उनके अनुप्रयोग पर प्रश्न करने की स्वतंत्रता बनी रहे।

तीसरी विशेषता है—बहुलता का सम्मान। विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपराओं द्वारा नैतिक प्रश्नों के दिए गए उत्तरों को संवाद में स्थान मिले।

चौथी विशेषता है—अनुभव और व्यवहार की एकता। संस्था स्वयं उन मूल्यों का पालन करे जिन्हें वह विद्यार्थियों को सिखाती है।

पाँचवीं विशेषता है—नैतिक स्वायत्तता। अंतिम उद्देश्य आज्ञापालन नहीं, विवेकपूर्ण नैतिक निर्णय की क्षमता हो।

छठी विशेषता है—संवादात्मक शिक्षण। नैतिक शिक्षा व्याख्यान की अपेक्षा चर्चा, समस्या, परिस्थिति-अध्ययन और आत्मचिंतन पर आधारित हो।

२७. प्रमुख निष्कर्ष

अध्ययन से निम्न प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

प्रथम, पूर्ण मूल्य-तटस्थ शिक्षा अवधारणात्मक रूप से संभव नहीं है, क्योंकि शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अनुशासन और मूल्यांकन में मूल्य-निर्णय अंतर्निहित रहते हैं।

द्वितीय, मूल्य-तटस्थता का सीमित रूप महत्त्वपूर्ण है। शिक्षक को अपने व्यक्तिगत मत को निर्विवाद सत्य के रूप में विद्यार्थी पर आरोपित नहीं करना चाहिए।

तृतीय, नैतिक शिक्षा और विचारारोपण समान नहीं हैं। दोनों के बीच निर्णायक अंतर शिक्षण की पद्धति, प्रश्न की स्वतंत्रता और तर्क की भूमिका से निर्धारित होता है।

चतुर्थ, लोकतांत्रिक शिक्षा के लिए कुछ नैतिक मूल्य पूर्वशर्त के समान हैं। पारस्परिक सम्मान, न्याय, स्वतंत्रता और संवाद के बिना स्वयं स्वतंत्र शिक्षा कठिन हो जाती है।

पंचम, नैतिक शिक्षा को अलग विषय के रूप में सीमित करना अपर्याप्त है। विद्यालय का संस्थागत व्यवहार स्वयं नैतिक शिक्षा का शक्तिशाली माध्यम है।

षष्ठ, बहुलतावादी समाज में मूल्य-शिक्षा को किसी एक संपूर्ण जीवन-दर्शन के प्रचार के बजाय साझा सार्वजनिक नैतिक आधार तथा आलोचनात्मक विवेक के विकास पर केंद्रित होना चाहिए।

सप्तम, भारतीय संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों और विविध दार्शनिक परंपराओं के मध्य संवाद मूल्यपरक

शिक्षा के लिए समृद्ध आधार प्रदान कर सकता है।

२८. शैक्षिक सुझाव

शिक्षा में नैतिक मूल्यों के समावेश को प्रभावी बनाने के लिए मूल्य-शिक्षा को पृथक उपदेशात्मक विषय बनाने के बजाय संपूर्ण पाठ्यचर्या में अंतर्निहित किया जाना चाहिए। साहित्य, इतिहास, विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन और सामाजिक विज्ञान में उत्पन्न नैतिक प्रश्नों को संवाद का विषय बनाया जा सकता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण में नैतिक दुविधाओं, पूर्वाग्रह, संवाद-कौशल तथा विवादास्पद प्रश्नों के शिक्षण को स्थान दिया जाना चाहिए।

विद्यालयों में विद्यार्थियों को निर्णय-प्रक्रियाओं में उचित सहभागिता प्रदान करना लोकतांत्रिक मूल्यों के व्यावहारिक अनुभव का साधन बन सकता है।

नैतिक विकास का मूल्यांकन लिखित परीक्षा से अधिक आत्मचिंतन, सहभागिता, परिस्थिति-विश्लेषण और तर्कपूर्ण संवाद के माध्यम से किया जाना चाहिए।

सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि विद्यालय के घोषित मूल्यों और संस्थागत व्यवहार के बीच संगति हो।

संदर्भ सूची

अरस्तू। (२००९)। निकोमेखीय नीतिशास्त्र (डब्ल्यू. डी. रॉस, अनु.). ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन। (मूल कृति लगभग ३५० ईसा पूर्व प्रकाशित)।

कांट, इ.। (१९९६)। नैतिकता के तत्त्वमीमांसात्मक आधार (एम. जे. ग्रेगर, अनु.). कैंब्रिज विश्वविद्यालय प्रकाशन। (मूल कृति १७८५ में प्रकाशित)।

कोहलबर्ग, एल.। (१९८१)। नैतिक विकास का दर्शन: नैतिक अवस्थाएँ और न्याय का विचार। हार्पर एवं रो।

गांधी, म. क.। (१९६२)। सच्ची शिक्षा। नवजीवन प्रकाशन मंदिर।

ड्यूई, ज.। (१९१६)। लोकतंत्र और शिक्षा: शिक्षा-दर्शन का परिचय। मैकमिलन।

ड्यूई, ज.। (१९३८)। अनुभव और शिक्षा। मैकमिलन।

नोडिंग्स, न.। (२०१३)। शिक्षा-दर्शन (तृतीय संस्करण)। वेस्टव्यू प्रेस।

पीटर्स, आर. एस.। (१९६६)। नीतिशास्त्र और शिक्षा। जॉर्ज ऐलन एवं अनविन।

रॉल्स, ज.। (१९७१)। न्याय का सिद्धांत। हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन।

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार। (२०२०)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०। भारत सरकार।

सेन, अ.। (२००९)। न्याय का विचार। ऐलन लेन।

टैगोर, र.। (१९६१)। रवीन्द्रनाथ टैगोर के संकलित निबंध और व्याख्यान। मैकमिलन।

खान, अ. अ.। (२०२५)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन का समावेशन। भारतीय आधुनिक शिक्षा, ४२(४), ५५–६८।

रानी, प., एवं कुमारी, भ.। (२०२५)। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० में शिक्षा के मूल्यों का मूल्य मीमांसीक विश्लेषण। जर्नल ऑफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट, १७(५-द्वितीय), १२७–१३२।

पाण्डेय, प. क.। (२०२६)। मूल्य शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२०। आइडियलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम्स, ५(१), ४३–४८।